Chap-3

तृतीय अध्याय

साठोत्तरी हिन्दी
नाटकों का रंगमंच

क. रंगशाला का शिल्प ।

ख. विविध दृश्य विधान ।

ग. प्रकाश योजना ।

घ. ध्वनि योजना ।

ङ. नेपथ्य ।

साठोतत्री हिन्दी नाटकों का रंगमंच

रंगशाला का शिल्प

शिल्प अभिव्यक्ति का कौशल है। अपनी बात को अधिक से अधिक प्रभावशाली रूप से संप्रेषित करने के लिये जो विधियाँ अपनाई जाती हैं, वही है टेकनीक, वही है शिल्प।

एक नाटक के लिये नाटककार को रंगशिल्प का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि नाटककार ही रंगमंच का प्रथम वास्तविक रंगशिल्पी होता है। 'शिल्प यानि कौशल'। अतः रंगशिल्प का अर्थ रंगकौशल से लिया जा सकता है। पहले इसके कई समानार्थी शब्द थे जैसे रंगनिर्देश आदि। रंगशिल्प नाटक का मूल हिस्सा होता है क्योंकि नाटककार पहले अपने मन में नाटक की एक दृश्यकल्पना व उसकी छबि को तैयार कर लेता है जिसके आधार पर लेखक दृश्यबन्ध, प्रकाश ध्वनि-संगीत, वेशभूषा रुपसज्जा आदि, नाटक लिखते समय स्पष्ट रूप से सामने लाने की कोशिश करता है और रंगकर्मी, निर्देशक उसे नाटक में खोजते हैं, व अपने नये प्रयोगों से उसे क्रियान्वित करते हैं।

ये रंगकर्मी नाटककार के द्वारा प्रयुक्त रंगशिल्प को प्रत्यक्ष व भौतिक आधार देकर इसके स्वरूप को रंगमंच पर और अधिक स्पष्टता प्रदान करता है। इस दौरान निर्देशक (नाटक मंचन के समय) कुछ नई वस्तुओं को, विशेष प्रभाव दिकाने के लिये प्रयुक्त कर सकता है, जैसे लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक 'कर्फ्यू' में टी.पी. जैन ने एक पिंजरे की कल्पना जोड़ दी थी जिससे नाटक में 'कर्फ्यू' के भाव की क्रूरता और अधिक प्रभावशाली रीति से व्यक्त हो पायी है।

आज भी आधुनिक युग में नाटककार एवं निर्देशक कथावस्तु व इसके शिल्प में नवीनता लाने तथा इसकी सफलता के लिए प्रयत्नरत हैं किन्तु फिर भी नाटक रंगसंभावनाओं को ध्यान में रखकर ही लिखे जा रहे हैं। हिन्दी नाटक के कथ्य और

शिल्प के नूतन आयामों को साठोत्तरी से ही प्रयोग में लाया जाने लगा इसे एक निश्चित दिशा देने का कार्य मोहन राकेश, जगदीशचन्द्र माथुर, डॉ. धर्मवीर भारती आदि नाटककारों ने किया।

श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने अपने नाटक 'पूर्व की ओर' के परिचय में रंगमंच के सम्बन्ध में कहा कि "प्राचीन भारतीयों की समुद्र यात्राओं के प्रसंग पर हिन्दी में नाटकों का अभाव ही है। संभव है यह नाटक उस अभाव की पूर्ति करेगा। खेलने वालों को रंगमंच सृजन में रंगमंच को सुधारने व संवारने की साध तो अभिनयकर्ताओं में रही है। मुझे उसी साध का सहारा है।"

नाटक का शिल्प भले ही रंगमंच से थोड़ा अलग हो जाये फिर भी निर्देशक अपनी मेहनत व लगन से उसमें प्रयोग द्वारा रंगमंचीय प्रस्तुति कर सकता है।

नाट्यशिल्प के आधार पर साठोत्तरी नाट्यों का अंकन किया जाय तो धर्मवीर भारती का लिखा नाटक 'अन्धा युग' कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

"इसकी भाषा, जिसमें बिम्ब प्रधानता और भाव तीव्रता के साथ बोलचाल की सहजता और प्रवाह है। गति एवं लय की विविधता है। भाषा के अतिरिक्त नाटक में कार्यव्यापार की निरन्तरता को विभिन्न रंग युक्तियों द्वारा निभाया गया है। इस नाटक में पहली बार नाटक के माध्यम से मानवीय नियति के मूलभूत प्रश्नों और उसके उत्तरों की तलाश प्रस्तुत की गई है।"[1] "युद्ध मात्र से उत्पन्न होने वाली मूल्यहीनता, अमानवीयता, विकृति और सामूहिक तथा वैयक्तिक विघटन का उद्घाटन इस नाटक में है, और अनुषंगिक रूप से वह देश के विभाजन में निहित आंतरिक गृहकलह की परिणातियों की ओर भी इंगित कहता है।"[2]

'अश्वत्थामा' अन्तर्मन की विक्षोभ मूर्ति है। महाभारत की अनैतिकता उसमें

पूँजिभूत-सी हो गई है। वह सामान्य स्थिति में न रहकर बहुत कुछ असामान्य सा पात्र हो गया है। भारती ने उसके घनीभूत क्षणों को काव्यत्व से सन्निविष्ट कर अभिव्यक्ति दी है।"[3]

"इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि अश्वत्थामा अपनी समस्त कुण्ठाओं के साथ जिस रूप में चित्रित किया गया है, वह रूप बहुत ही शक्तिशाली एवं सजीव बन पड़ा है।"[4]

"लेखक की सहानुभूति भी बहुत दूर तक अश्वत्थामा के साथ ही दिखाई पड़ती है। युधिष्ठिर के अर्धसत्य की मीमांसा ने लेखक की सहानुभूति का स्त्रोत अश्वत्थामा की ओर मोड़ दिया है। 'अन्धा युग' की प्रायः सभी समस्याओं का वह केन्द्रबिन्दु है और दृश्यकाव्य के समापन तक उसका चरित्र बराबर निखरता गया है।"[5]

महाभारत के अट्ठारहवें दिन की संध्या से लेकर प्रभासतीर्थ में कृष्ण की मृत्यु के क्षण तक के इस दृश्यकाव्य में जिन समस्याओं को उठाया गया है उसके लिये महाभारत के उत्तरार्द्ध की घटनाओं का आधार लिया गया है। अधिकतर कथावस्तु तो प्रख्यात है ही, केवल कुछ तत्व ही उत्पाद्य हैं। डॉ. सिद्धनाथ कुमार के शब्दों में - "अन्धा युग की रंगमंचीय सफलता का मुख्य आधार है इसका शिल्पगत वैविध्य, जो संवाद, छन्द, भाषा, बिम्ब और प्रस्तुतिकरण आदि सभी स्तरों पर देखा जा सकता है। संवाद के सम्बन्ध में यह तथ्य ज्ञातव्य है कि कहीं मात्र नैरेशन है, कहीं एक ही भाव या विचार का कई स्वरों में विस्तार (जैसे-प्रहरियों की बातचीत में) कहीं पात्रों का उत्तर प्रत्युत्तर है, कहीं पात्रों का आत्मभिव्यक्ति प्रधान स्वगत है। संवादों की विशेषता है कि इन्होंने अपने लिये यथास्थान अनुरूप छन्द गढ़ लिये हैं... कहीं सममात्रिक एकान्त छन्द है, कहीं अतुकान्त मुक्त छन्द, कहीं इनकी गति क्षिप्र है कहीं मंद।... इनकी लय और गति में पर्याप्त वैविध्य है, जिससे रचना में एकरसता नहीं आने पाती।"

महाभारत (तीसरे विश्वयुद्ध के बाद एक ऐसा युग अवतरित हुआ (होगा) जिसमें बचते हैं तो केवल पथभ्रष्ट, आत्महारा विगलित, अंधे, अपनी ही अन्तर की अन्धी गुफाओं में भटकते (ये कथा उन्हीं अन्धों की है) लेकिन फिर भी एक तत्व, एक अंश जो हमारे मन का है, उसके सहारे हम कर सकते हैं, नूतन निर्माण पिछले ध्वंशों पर सभी परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए। वही एक तत्व मानव भविष्य को बचाने की क्षमता रखता है। अन्धे, संशय, दासता और पराजय से हमें अपने ही अन्दर उस अंश को ढूंढना है जो हमारे मन में स्थित है। यै कथा ज्योति की है, अन्धों के माध्यम से।

साठोत्तरी का ही एक और नाटक जिसका शिल्प अपनी ऊँचाइयों को छू जाता है, वह है मोहन राकेश द्वारा लिखा हुआ 'आषाढ़ का एक दिन'। इसमें कालिदास और माल्लिका की प्रेमकथा, प्रेम व आत्मबलिदान का वर्णन है। एक कलाकार की आत्मयातना को नाटककार ने तीन अंकों में प्रस्तुत किया है। सारी घटनाओं को मल्लिका के निवास स्थान पर ही घटते हुए बताया है।

"कथा एक आषाढ़ के दिन से शुरू होती है और वैसे ही आषाढ़ के एक दिन पर समाप्त। प्रस्थान और समापन एक ही बिन्दु पर होता है। मौसम वही है, हर साल वही आषाढ़, वैसी ही अंधेरी रात, घनघोर गर्जन, और मूशलधार वर्षा। आषाढ़ का दिन तो हर साल लौटकर आता है, एक सा। लेकिन आदमी की जिन्दगी में आनेवाले हर आषाढ़ के दिन कैसे बदले-बदले होते हैं, यह देखना हो तो देखा जा सकता है - कालिदास, मल्लिका, विलोम और मातुल, इन सबकी जिन्दगी में। उनकी जिन्दगी में आनेवाला हर आषाढ़ एक नया मौड़ लेकर आता है, और अपनी मुशलाधार वर्षा में उनकी व्यर्थ होती जा रही जिन्दगी को बहाये चला जाता है। आषाढ़ की तरह ही मल्लिका और कालिदास की जिन्दगी में घनघोर काले बादल फिर घिर आते हैं, दिन में ही रात जैसा अन्धेरा हो जाता है। फिर शुरु होती है अपनी बाढ़ में उनका सबकुछ

बहा ले जाने वाली घनघोर वर्षा।"[6]

कालिदास और मल्लिका का जीवन अपने आप में एक सजीव आषाढ़ का दिन जैसा बन जाता है जिसके जीवन पर आषाढ़ के घने काले बादलों के बीच से जीवन देनेवाली वर्षा के बीच ही बिजलियाँ कौंधती हैं, वज्रपात होता है, और वज्रपात से कालिदास व मल्लिका के जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मर जाता है। आगामी वर्षों में आनेवाले आषाढ़ के दिन अपनी मूसलाधार वर्षा के बावजूद उनके जीवन के उस मृत हिस्से को पुनर्जीवित नहीं कर पाते। कभी आषाढ़ की वर्षा में उछलते-कूदते पहाड़ियों की ऊँचाईयों पर बादलों को छूते ठंडी-ठंडी बूंदों का स्पर्श अपने बदनों पर झेलने वाले और पुलक एवं सिहरन से भर उठने वाले कालिदास और मल्लिका अगले आषाढ़ के दिनों में ठीक वैसी ही पुलक, मस्ती, उछाह और रोमांच महसूस नहीं कर पाते।

रंगमंच पर इसकी प्रस्तुति से ये तो साफ हो गया कि इस नाटक को खेलते समय इसके तीनों दृश्यों में हो रहे वर्षों के अनन्तर परिवर्तन को ध्यान में रखना अतिआवश्यक है। शिल्प की दृष्टि से यह एक तटस्थ नाटक के रूप में साठोत्तरी दशक में आया।

सातवें एवं आठवें दशक में आये नाटकों में शिल्प एवं रंगशाला को केन्द्र में रखकर तथा मनोरंजन के लिये नाटककारों के साथ-साथ आज की जिन्दगी में हो रहे परिवर्तनों को लिखा। हमीदुल्ला का नाटक 'सुदामा दिल्ली आये' एक ऐसा ही नाटक है जिसमें कृष्ण-सुदामा चरित की एक घटना को आधार में रखकर आज हो रहे मानवमूल्यों का ह्रास, स्वार्थपरकता, मशीनी जिन्दगी व आदमी की लाचारी को चरितार्थ किया गया है।

"आज यांत्रिक व्यवस्थाओं ने आदमी को इतना आत्मकेन्द्रित बना दिया है कि

स्वयं के स्वार्थ की परिधि से जाकर कुछ देख ही नहीं पाता। यह एक वास्तविकता है कि सामान्य आदमी, जिसके जीवन वृत्त को आधार बनाकर भावी योजनाओं की नींव रखी जा रही है उसके लाचार चेहरे पर सिर्फ सवाल है। प्रश्नचिन्ह! चाहे इन सवालों को पढ़ा न जा सके।"[8]

"रोशनी की परम्परा से जुड़े रहने की कोशिश में यह आम नागरिक बूंद-बूंद पिघल रहा है। अस्तित्व की इस लड़ाई में सिर्फ उसका अनपा संघर्ष उसके साथ है वह हारता भी है तो स्थितप्रज्ञ की भांति हार को समवेत दृष्टि से देखता है।"[9]

"सर्वहारा और सम्पन्न के इस द्वन्द्व से व्यक्तिगत आकांक्षाओं और समाजजगत यथार्थ के बीच की दरार निरंतर बढ़ी है। छल, कपट, पाखंड, दोमुंहापन आज के जीवन में आकंठ प्रवेश कर गये हैं, और इन्सानियत इसी बौतिक पतन के चक्रजाल में लटपटा रही है। क्षुद्र स्वार्थों पर पनपनेवाली यह संस्कृति रोशनी को बांध देने का आग्रह है, उसकी विकास क्षमता का अस्वीकार है। मूल्यविहीन और संस्कार शून्य होते जाने का प्रतिरोध हम सबकी साझी लड़ाई है। यही इस नाटक की रचना की वजह भी है।"[10]

नाटककार ने मंच पर सारी समस्याओं को प्रदर्शित करने के लिये तथा आदमी के अन्तरमन में हो रही उथल-पुथल को बाहर लाने के लिये नगाड़े की ताल एवं नृत्य मुद्राओं के प्रदर्शन के माध्यम को अपनाया है।

'एक था गधा उर्फ आलादार खाँ' में एक तानाशाह नवाब को चित्रित किया है जो आम प्रजा में मशहूर होने के लिये लालायित है। वह नवाब गलतफहमी के कारण आलादाद खाँ नामक व्यक्ति के जनाजे को राष्ट्रीय सम्मान दने की अपने राज्य में घोषणा तो कर देता है, लेकिन जब उसे पता चलता है कि आलादाद खाँ नाम का एक गधा मरा है, व्यक्ति नहीं, तो वह अपना अहम् और इज्जत बचाने के लिये एक

आलादाद खाँ नाम एक व्यक्ति को ही मरवा देता है। आलादाद खाँ जो आम व्यक्ति का प्रतिबिम्ब है जो एक व्यवस्था में जीता है और अच्छे नागरिक की जिन्दगी बसर करता है। मगर उसका जीना और मरना उसी व्यवस्था पर निर्भर है।

'एक था गधा उर्फ आलादाद खाँ' एक हास्यप्रद नाटक है। कुछ नाटक ऐसे होते हैं जिन्हें जब रंगमंच पर किया जाता है तब वे संजिदा किस्म के नाटक लगते हैं, और कुछ नाटक ऐसे होते हैं जो रचनात्मक होते हैं। किन्तु यह नाटक ऐसा है जिसमें हास्य के साथ-साथ संजिदापन व रचनात्मक तो है ही और इसमें सामाजिक व राजनीतिक परिस्थितियों का चित्रण भी किया गया है।

आज के आधुनिक नाटककारों के पास शिल्प के लिये कई वस्तुयें व समस्याएँ आदि हैं जो वे शब्दों के माध्यम से अपने नाटक में करते आये हैं परन्तु, रंगमंच पर नाटक निर्देशक ही शिल्प को एक आयाम देता है क्योंकि उसके पास क्राफ्ट की समझ होती है और वह नाटक की नाप जोख शिल्प की दृष्टि को ध्यान में रखकर ही ज्यादा करता है।

रंगमंच पर प्रस्तुति की प्रक्रिया में रंगनिर्देशक ही चुनाव की मुद्रा में आता है। आज का युवा नाटककार रंगमंच से किसी न किसी तरह से जुड़ा हुआ है इसलिये वह इन सभी जरूरी चीजों व इनके माध्यमों को बराबर ध्यान में रखना आवश्यक समझता है। हिन्दी रंगनिर्देशकों का नये नाटककारों के प्रति जो रवैया है उसे बहुत छूट देने पर ही उसका उद्देश्य सामने साफ नजर आ जाता है।

आज नाटककार का संघर्ष सिर्फ नाटक तक ही सीमित नहीं रह गया है बल्कि वे अपने संघर्ष को अपने अहम् तक ले गये हैं, जिससे रंगमंच तो व्यक्तिगत और सामाजिक स्तर पर बँट ही गया है, साथ-साथ यह अहम् नाटक निर्देशक तक नहीं पहुँच पाये। इस टकराहट की प्रक्रिया में हिन्दी के अच्छे से अच्छे नाटक धरे के

धरे रह गये हैं।

ज्ञानदेव अग्निहोत्री द्वारा लिखा गया नाटक 'शुतुरमुर्ग' शिल्प की दृष्टि से एक प्रयोगधर्मी नाटक है। नाटककार ने इसमें प्राचीन व शास्त्रीय नाट्य रुढ़ियों, एब्सर्ड, फास, यथार्थवादी आदि रंग रुढ़ियों को तोड़ना रहा था और न ही उनका अन्धानुसरण था। शुतुरमुर्ग के कथ्य को मैं केवल उसी शिल्प में कह सकता था। जिसमें मैंने कहा है। क्योंकि इस नाटक के कथ्य से ही शिल्प का जन्म हुआ है।"[11]

इसी तरह सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नाटक 'बकरी' एक राजनैतिक व्यंग्य नाटक है जो सामान्य जनता के लिये सामान्य शब्दों में लिखा गया है। इसलिये केवल 'बकरी' प्रतीक को छोड़कर नाटक में सर्वत्र अभिधात्मकता के ही दर्शन होते हैं।

इस नाटक की नाट्यसंरचना शिल्प में लोकनाट्य शैली अपनाई गई है। लेकिन यह उधार ली हुई नहीं है, हमारी अपनी ज़मीन की उपज है। पारम्परिक नौटंकी की शैली में लिखा गया यह नाटक अपने सहज दृश्यबंध और मंचशिल्प के कारण गाँव और शहर हर जगह के आम आदमी के लिये एक सहज सुलभ नाट्य प्रस्तुति होगी।"[12]

'बकरी' आम आदमी की पीड़ा को, आम आदमी की भाषा में आम आदमी के सामने प्रस्तुत करने वाला हिन्दी का एक महत्वपूर्ण नाटक है, भले ही इसमें नौटंकी शैली का प्रभाव मिलता है।

"व्यवस्था के समकालीन राजनीति के छदम और उसके जनविरोधी एवं जनतंत्र विरोधी चरित्र पर प्रहार करता हुआ यह नाटक जनता, विशेषकर ग्रामीण जनता पर लादी गई धर्मांधता और उसमें होनेवाले शोषण, उत्पीड़न का चित्रण करते हुए ऐसे गुस्से को रेखांकित करता है, जिसे यदि सजग यथार्थ से जोड़कर देखा जाय तो

जनवादी चेतना के प्रसार में सहायक हो सकता है।"[13]

टूच्ची राजनीति, आडम्बरपूर्ण थोथले धर्म से गठजोड़ करके आम आदमी के शोषण की, ऐसी मजबूत, क्रूर और अमेघ व्यवस्था करती है कि जनता स्वयं को बकरी बनाकर खुद-बखुद बलि देने को आतुर हो उठती है। वही नाटक की विडम्बनापूर्ण स्थिति का चित्रण है।

"यह नाटक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से एक ऐसा अभिनय प्रयोग है जो एक स्तर पर रंगमंच की सर्वव्याप्ति की संभावनाएँ उजागर करता है तो दूसरे स्तर पर खास तौर से हिन्दी के व्यंग्य प्रधान नाटकों को एक नया आयाम देता है। एक स्तर पर रंगमंच को कला की कसौटी पर भी खरा उतारते हुए सामयिक यथार्थ से, राजनीति से जुड़ने की तमीज सिखाता है, तो दूसरे स्तर पर उन तमाम़ तकनीकी जटिलताओं को फोड़ने की क्षमता प्रदर्शित करता है जो जन साधारण को अभिजात्य वर्ग से, गाँव को शहर से दूर रखने में सहायक होते रहे हैं।"[14]

अतः यह तो स्पष्ट है कि इस नाटक का शिल्प लोकशैली की तरह ही है जिसे कहीं भी खेला जा सकता है। यह नाटक जितना गाँवों, कस्बों, मजदूर बस्तियों, स्कूल, कॉलेज आदि जितनी भी जगह खेला जायेगा, उसका उतना ही उद्देश्य पूर्ण होगा। ज्ञानदेव अग्निहोत्री के ही नाटक 'नेफा की एक शाम' में चीनी आक्रमण के प्रतिरोध में आदिवासियों के संघटन और गौरिल्ला-युद्ध पद्धति की सार्थकता निर्देशक ने रंगमंच पर सिद्ध की है। किन्तु पिटे हुये आदर्शों की महत्ता और बहुलता व इसके परिवेश की मुखरता के कारण शिल्प की दृष्टि से यह नाटक सामान्य स्तर से ऊपर नहीं उठ सका है। डॉ. चन्द्र के नाटक 'आकाश झुक गया' में संसार को एक मठ माना गया है। वर्तमान समय में संसार भौतिकता की ओर विशेष उन्मुख है इसलिये मठ का महंत स्वामी युगानन्द है। भौतिकता के अनुयायी स्वामी युगानन्द के शिष्य हैं। विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि चरित्र अपनी जटिल समस्याएँ स्वामी के पास लेकर

आते हैं और स्वामी अनैतिक एवं भ्रष्टाचार से युक्त साधनों द्वारा सफलता प्राप्त करने का गुरुमंत्र देता है। यह नाटक समाज को नंगा करने के प्रयास में अधिक सार्थक सिद्ध हुआ है।

बृजमोहन शाह एक ऐसे नाटककार हैं, जिन्हें रंगमंच का सीधा और व्यावहारिक अनुभव है। उनके नाटक 'युद्धमन' में मनोवैज्ञानिक परिणामों का तथ्यात्मक और प्रभावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया गया है। तकनीकी दृष्टि से डाक्यूमेंटरी शिल्प से आरंभ होने वाले इस नाटक में रेडिओ, रंगमंच, सिनेमा आदि का रचनात्मक प्रयोग किया गया है। लेफ्टिनेंट द्वारा किये गये हत्याकांड के मुकदमे के दृश्य की समाप्ति के बाद सम्पूर्ण नाटक फ्लेश बैक पद्धति से खुलता है।

"शिल्प की दृष्टि से 'जुलूस' नाटक तीव्र नाटकीय घटनाओं का एक ऐसा कोलाज़ है जो चेतना प्रवाह की तरह तरल, लचीला और असंगत प्रतीत होने के बावजूद कहीं बहुत भीतर से एक नये व्याकरण और रंग अनुशासन से संयोजित है। गोलाकार त्वरित गतियाँ, मुखर मुद्रायें, चौमुखी संयोजन, चीखते हुए संवाद गाने, भजन कीर्तन, और रामनाम सत्य है, के साथ साथ हंसती कचोटती पैरोडियों, क्रियाकलापों तथा संवादों, सामंजस्यपूर्ण अथवा वैषम्यपूर्ण विविध संयोजनों से उद्भूत नाट्य प्रभाव इस प्रस्तुति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।"[15]

अमानत का 'इन्दरसभा' 1848 में लिखा गया और बाद में इसको कई रंगसंस्थाओं ने प्रदर्शित किया। आज इतने वर्षों के बाद भी इसका मूल आकार-प्रकार यथावत है। किन्तु इसमें धीरे-धीरे थोड़ा परिवर्तन भी हुआ है। यह परिवर्तन इसके शिल्प एवं शैली में आया है। इसका प्रथम प्रभाव इसकी संगीत परिकल्पना पर पड़ा जो इसके बीज तत्वों का निर्धारण करता है। उत्तर भारतीय संगीत पर लेखक के ज्ञान में कोई भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, जिसका उपयोग कहानी के वर्णन में नाटकीय शास्त्रों की तरह किया गया है। यही सांगीतिक ढाँचा हमारे देश में व्यापक

रंगमंच के तथाकथित पारम्परिक ढाँचे से भिन्नता लिये हुए है।

उदाहरण के लिये नौटंकी में 'बहर-तवीब' या चौबोला नाटक के लगभग सभी पात्रों द्वारा गाया जाता है। किन्तु इन्दर सभा में प्रत्येक पात्र उत्तर भारतीय संगीत की विभिन्न रागों पर आधारिक अलग-अलग धुनों का उपयोग करता है। आंशिक पुनरावृत्तियों को स्वीकार करते हुये अलग-अलग पात्रों के लिये अलग-अलग संगीत पद्धतियाँ हैं।

नृत्य तो 'इन्दरसभा' का प्रमुख आकर्षण केन्द्र है। चूंकि इसकी पृष्ठभूमि में लखनऊ का परिवेश है, नवाज वाजिद आली शाह का परीखाना और हरम की अस्पष्ट व्यापकता है। अतः इसमें अन्य भारतीय नृत्यों की अपेक्षा इसके गानों के साथ कथक नृत्य अधिक सटीक बैठता है।

आज नाट्य निर्देशक जब इसका प्रदर्शन करता है तो वह इस बात का ध्यान रखता है कि प्रस्तुति में कौतुकागार में रखी प्राचीनकाल की वस्तु मात्र बनाकर ना रह जाय वरन् ऐसा नाटकीय अनुभव हो जो उतना ही संतुष्टिकारक और सौंदर्ययुक्त हो जैसा वह सौ वर्षो से भी अधिक पूर्व में रहा होगा।

'इन्दरसभा' का कथा शिल्प इस प्रकार है - सिंघलद्वीप नामक राज्य में राजा इन्दर अपने दरबार में इन्दर परियों को हाजिर करने का हुक्म देता है कि वो इस सभा में आकर गानों से उसका मनोरंजन करे। पुखराजपरी, नीलम परी, लाल परी व सब्जपरी एक के बाद एक अपने नृत्य एवं गायन के कौशल से राजा का मनोरंजन करती हैं। राजा इन्दर की पलकें नींद से बोझिल होने पर परियाँ दरबार हिन्दुस्तान के ऊपर से उड़कर जाती हैं तथा उसकी निगाहें एक शहजादे पर पड़ती हैं जो अपने महल में सो रहा है। सब्जपरी उसे अपना दिल दे बैठती है। सब्जपरी कालादेव से कहती है कि वो उस शहजादे को इन्दर की राजधानी में ले आये तो वह उम्रभर उसकी

दासी बनकर रहेगी। सब्जपरी को जिससे प्यार होता है वो शहजादा गुलफाम है। सब्जपरी उससे छुप-छुपकर मिलती है। लेकिन वह एक दिन देख लिया जाता है और यही उन पर इन्दर के क्रोध का कारण बनता है।

शहजादे गुलफाम को 'कोह ए काफ' में एक सूखे कुँए में कैदी बना लिया जाता है। सब्जपरी अपने प्यार को खोने के गम में बेचैन हो उठती है। वह खुद की सुधबुध खो बैठती है। और एक जोगन बन जाती है, तथा जगह-जगह घूम-घूम कर बिछोह के गाने गाती है। वक्त गुजरता है। और उसकी शोहरत राजा इन्दर के कानों में पड़ती है। वह उसे दरबार में आने का निमंत्रण देता है। राजा उसे पहचान नहीं पाता है लेकिन गायन और नृत्य में उसकी महारत देखते हुए उसे कोई भी इच्छा जाहिर करने को कहता है और उसे पूरा करने का वचन भी देता है। सब्जपरी अपने असली रूप में आती है और शहजादे गुलफाम का हाथ मांगती है। राजा इन्दर उसे पहचान लेता है लेकिन फिर भी वह अपना वचन पूरा करता है और दोनों प्रेमी एक हो जाते हैं।

विविध दृश्य विधान :

रंगमंच पर दृश्य के परिवर्तन के समय वस्तुओं को इधर-उधर रख दिया जाता है, तथा दृश्य के अनुसार ही फिर उसे जमा दिया जाता है। किन्तु कुछ दृश्य ऐसे होते हैं जिन्हें रंगमंच पर प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है, जैसे तूफान का आना, झंझावात, युद्ध आदि को दर्शाने में निर्देशक को परेशानियों का सामना करना पड़ता है। अतः वे निर्देशक ध्वनि की सहायता से या अन्य आधुनिक यन्त्रों के द्वारा रंगमंच पर तूफान, झंझावात आदि की आवाज का इस्तेमाल करते हैं।

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक 'कर्फ्यू' में पूरे रंगमंच पर एक जाल से ही पूरे दृश्य विधान को तैयार किया गया था। बंसी कौल इस नाटक के दृश्य विधान के सम्बन्ध में कहते हैं -

"जाल का बना हुआ कमरा जहाँ हम अपनी बैठक, सोने के कमरे में स्वतः अनजाने कैद हैं। यह जाल हमीं ने अपने हाथों से अपने चारों तरफ बुना है। यह सच है कि जीवन में कभी ऐसी घड़ी आती है जब हम इस घेरे को तोड़ देना चाहते हैं, पर हम केवल व्यक्तिगत स्तर पर ऐसा करना चाहते हैं। जो असंभव है। यह संभव है, केवल सामाजिक स्तर पर, जिसमें वे तमाम लोग सहभागी हों, जिनसे यह कर्फ्यू लगा समाज बना है, वे सब इस कार्य में शामिल हों, क्योंकि सब फँसे हैं उस जाल में, वह जाल अनेक स्तरों का है, वह सूक्ष्म भी है और स्थूल भी।"[16]

धर्मवीर भारती के नाटक 'अन्धा युग' में एक दृश्य में नेपथ्य में आंधी की सी ध्वनि है। एक प्रहरी कान लगाकर सुनता है, दूसरा भौहों पर हाथ रखकर आकाश की ओर देखता है।

प्रहरी १ : सुनते हो, कैसी ध्वनि यह, भयावह?

प्रहरी २ : सहसा अंधियारा क्यों होने लगा, देखो तो दिख रहा है कुछ?

प्रहरी १ : अन्धेराजा की प्रजा कहाँ तक देखे?

दिख नहीं पड़ता कुछ, हाँ शायद बादल है।

(दूसरा प्रहरी भी बगल में आकर देखता है और भयभीत हो उठता है।)

प्रहरी २ : बादल नहीं हैं, ये गिद्ध हैं, लाखों करोड़ों, पांखे खोले।

(पंखों की ध्वनि के साथ स्टेज पर और भी अंधेरा)"[17]

ध्वनि संयोजन से और प्रकाश के प्रयोग के साथ मंच पर युद्धों आदि दृश्यों को आसानी से रंगमंच पर दिखा दिया जाता है। रंगमंच पर आज ऐसे दृश्यों में जीवंतता लाने के लिये निर्देशक ने प्रकाश को माध्यम बनाया तथा प्रोजक्टर पर स्लाईड्स को दिखाना प्रारंभ कर दिया। यह नया प्रयोग देखकर रंगमंच का दर्शक अचंभित रह गया। इसी तरह के एक प्रयोग में निर्देशक ने 'एक सत्य हरिश्चंद्र' (लक्ष्मीनारायण लाल) नाटक में संवाद के माध्यम से दर्शकों के मानसपटल पर यह दृश्य अंकित कर दिया जैसे -

रंगा - पुरूष वचन सुनके तिया खुल गये मन के द्वार

आधी की आधी दई साड़ी रानी फार
बहायो गंगा में रानी देये आशीश
छिपे देख यह सब रहे, नारद इन्द्र मुनीष।
(नारद, विश्वामित्र और इन्द्र का प्रवेश)"[18]

वैसे नाटक में कुछ सात दृश्य हैं। जिसमें यह जन-जीवन और उसके मूल्यों का एक नवीन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह नाटक पूर्णतः मौलिक अपनी मिट्टी अपनी नाट्य परम्परा और रंग संस्कारों से उपजा एक अप्रतिम नाटक है, जो आधुनिक होने के साथ-साथ कालजयी भी है। मंच पर साधारण दृश्य विधान किया गया है। इसकी रंगमंच पर प्रस्तुति के समय नाटककार ने इसकी प्रस्तावना में ही एक दृश्य को तैयार किया है। यथा -

"मंच पर एक गाँव का दृश्य है। बायीं ओर हरिजनों का कच्चा कुँआ है, दायीं ओर पीछे सवर्णों का कुआँ है। जैसे स्नान के बाद कुछ मंत्रपाठ कर रहा है। कुछ क्षणों के बाद घुमंतू एक गरीब, टूटा हुआ चमार उधर पीछे से आता है। कुएँ पर रुकता है। पुरोहित कुँए से जलभरा लोटा निकालता है। प्यासा घुमंतू पानी मांगता है। पुरोहित उसे देखकर दुत्कारता है 'छिःशूद्र कहीं का। कुँए पर चढ़ आया। भागता है या...' अपने ऊपर जल छिड़कता है और अपनी पूजा सामग्री लिये हुये वहीं चबूतरे पर कथा पूजा की तैयारी करता है।"[19]

पहले दृश्य से सातवें दृश्य तक उस गाँव के अन्दर हो रही घटनाओं को ही दर्शाया गया है। रंगमंच पर कुछ निर्देशकों ने दृश्य परिवर्तन के समय पर्दे का प्रयोग किया था, लेकिन अब मंच पर प्रकाश के द्वारा ही दृश्य परिवर्तन करने में निर्देशकों को आसानी होती है। दृश्य के प्रारंभ होते ही लोग गाते हुए रंगमंच पर आते हैं, तो अगले दृश्यों में संगीत के माध्यम से गायन को भी महत्व दिया जाता है। अगले दृश्यों में रंगमंच पर थोड़ा बहुत कुछ बदलाव भी किया जाना चाहिये जैसा कि इस नाटक के निर्देशानुसार लेखक के द्वारा बताया गया है।

"काशी का बाजार! दुकानें लगी हैं। चीजों को बेचनेवाले आवाजें लगा रहे हैं। एक और काशी की प्रसिद्ध पतुरिया का कोठा है।

अतः रंगमंच पर पात्रों द्वारा ही अपनी वस्तुओं को बेचने के लिये आवाजें लगाने से सहज ही बाजार का दृश्य उपस्थित हो सकता है। पतुरिया के कोठे का दृश्य मंच के एक प्रखंड में बिना किसी कठिनाई के दर्शाया जा सकता है।"[20]

नाटक निर्देशक सामान्यतः सभी दृश्यों को बिना तामझाम एवं साज-सज्जा के किसी भी रंगमंच पर आसानी से प्रस्तुत कर सकता है।

अमानत लखनवी द्वारा लिखा हुआ नाटक 'इन्दर सभा' जब राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों द्वारा सन 1965 में किया गया तो उन्होंने रंगमंच पर एक साधारण दृश्य उपस्थित किया, जिसमें इन्दर के दरबार को बिना ज्यादा साज सज्जा के सजाया गया था। सम्पूर्ण कथा को एक सूत्र में पेश किया गया। सम्पूर्ण नाटक में पर्दे का प्रयोग दृश्य परिवर्तन के लिये किया गया था। यूं तो उज्जैन में महाराज विक्रमादित्य के राज्यकाल में शकुन्तला के प्रथम अभिनय का वर्णन जो हमें मिलता है उसमें भी पर्दों का उल्लेख है और सिनेरियों का भी, लेकिन अमानत की 'इन्दर सभा' के स्टेज होने से पहले तक भारत में जो नाटक मण्डलियाँ रास लीलायें करती थीं, उनमें पर्दे नहीं होते थे। पर्दों का प्रचलन तो पहली बार 'इन्दर सभा' से ही हुआ। ऐसे ही हमीदुल्ला के नाटक 'सुदामा दिल्ली आये' में रंगमंच की सज्जा के लिये विशेष प्रावधान रखा गया जिससे इसके दृश्यों को आसानी से दर्शाया जा सके। जैसे -
"दर्शकों की ओर से मंच के ऊपरी भाग में एक ऊँचा उठा हुआ प्लेटफार्म, पीछे की ओर इससे सटा एक तख्ता जिस पर गायक मण्डली और कलाकार बैठते हैं। यथा अवसर बैठने के लिये उठाऊ लकड़ी के आसन।"[21]

इस नाटक की प्रस्तुति के लिये भी दृश्यों में पर्दों का प्रयोग कर सकते हैं और समयानुसार लोकनाट्य के रूप में खुले रंगमंच पर प्रयोगों से इसे लाया जा सकता है जैसा कि दृष्टव्य है -

"पर्दा उठने पर सभी कलाकार नगाड़े की ताल पर नृत्य मुद्रा में मंच पर प्रवेश करते हैं। कलाकारों के बीच गणेशमुख धारण किये हुए एक कलाकार रंगमंच पर दर्शकों के सामने! स्थैतिक।"[22]

और फिर बन्दना प्रारंभ

'हे गज वंदन मगल करण गणनायक गणराज'

नरेन्द्र कोहली ने अपने नाटक 'हत्यारे' में एक ही मध्यमवर्ती परिवार के ड्राइंगरूम के साजों-सामान द्वारा रंगमंच को सुशोभित कर दिया है। नाटक की सम्पूर्ण घटना एक ही कमरे में सात दृश्यों में समाप्त हो जाती है। दृश्य तीन व चार में ड्राइंग रूम में जो सामान पड़ा है वह अस्त-व्यस्त है, अतः बाद के दृश्यों में ड्राइंग रूप को व्यवस्थित कर दिया जाता है। इन अंकों में भी दृश्य परिवर्तन के लिये प्रकाश का सहारा लिया जा सकता है। एक ही कमरे में मनुष्य की हो रही आन्तरिक व्यवस्था की हलचल को नाटककार ने किस प्रकार पहले ही दृश्य में दर्शा दिया है देखिये -

"एक मध्यमवर्गी ड्राइंग रूम। सोफा, कुर्सियाँ और दीवान। आवश्यकता के अनुसार छोटी बड़ी मेजें भी रखी जा सकती हैं। दीवार में एख खिड़की और एक अलमारी। प्रकाश होने पर कमरे में बनारसीदास और शांति बैठे हैं। हाथ में एक पत्रिका लिये अनिल एक ओर खड़ा है जैसे पढ़ रहा हो, किसी प्रतिक्षा में पत्रिका के पृष्ठ उलट रहा हो।

पत्रिका रख, वह धीरे-धीरे आकर बनारसीदास के सामने वाली कुर्सी पर बैठ जाता है।"[23]

इन आन्तरिक हलचलों का प्रभाव ड्राइंग रूम में रखी वस्तुओं पर भी पड़ा, जैसे नाटक

के चौथे दृश्य में -

"वही ड्राइंग रूम! ड्राइंग रूम सही तरीके से सजा हुआ नहीं है। सबकुछ अव्यवस्थित लग रहा है। सुरेश, परेश, उर्मिला, शालिनी और अनिल जहाँ-तहाँ अनौपचारिक ढंग से बैठे हुए हैं।"[24]

नाटक के अन्त में प्रकाश लुप्त हो जाता है, और रंगमंच पर अंधेरा छा जाता है।

साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में कुछ वर्षों बाद जो भी प्रयोगिक नाटक हुए उनमें परम्परा से चली आ रही दृश्यों एवं अंको की बंधता को नाटककारों ने अस्वीकार कर दिया तथा नाटक में अंकों व दृश्यों की संख्या को हम देख सकते हैं। 'अन्धायुग' में पाँच अंक हैं, तो 'आषाढ़ का एक दिन' में तीन ही अंक हैं डॉ. लाल के नाटकों में 'व्यक्तिगत', 'सबरंग', 'मोहभंग' आदि।

रमेश बक्षी के नाटक 'तीसरा हाथी' में सिर्फ मध्यांतर है। शंकर शेष का नाटक 'एक और द्रोणाचार्य' पूर्वाद्ध और उत्तरार्द्ध में विभाजित है। सुरेन्द्र वर्मा के नाटक 'छोटे सैयद बड़े सैयद' में तो 37 दृश्य हैं और लगभग 80 के करीब पात्र हैं।

कुछ नाटकों में न मध्यांतर हैं, न अंक व दृश्य उन्हें सीधे-साधे ही मंच पर प्रस्तुत कर दिया जाता है। जैसे 'दुलारीबाई' मणिमाधुकर का है। 'आज नहीं कल' गंगाप्रसाद विमल का नाटक है। और मुद्राराक्षस का 'योर्स फेथफुली' आदि इसी श्रेणी में आते हैं।

लक्ष्मीकांत वर्मा का नाटक 'रोशनी एक नदी है' में रंगमंच पर जिस सेट का वर्णन किया गया है उसमें दर्शकों को और निर्देशकों को यह नाटक बड़ा ही सरल एवं सुविधाजनक लगा। दृश्यों की जोरदार पकड़ ने नाटक में रोमांच उपस्थित कर दिया है तथा सेट के माध्यम से रंगमंच पर नाटक की पूर्ण स्थिति को दर्शकों के सामने

प्रस्तुत किया जा सकता है, जैसे - "एक ऊँचा प्लेटफार्म जिसकी लम्बाई छह फुट, चौड़ाई चार फुट और ऊँचाई तीन फुट है। यह प्लेटफार्म दाँयी ओर के बैक ड्राप से सटा हुआ तिरछा दायें विंग तक फैला है। सामने तीन सीढ़ियाँ बिलकुल प्लेटफार्म की लम्बाई घेरते हुए दिखती है। प्लेटफार्म के बीच में पीछे की ओर एक लैम्प पोस्ट सटा हुआ है। लेकिन बल्ब बैकड्राप की तरह है। उसे लेम्पपोस्ट में एक प्लेट लगी है, जिस पर लाल रंग से लिखा है, 'बस स्टॉप'। लेम्प पोस्ट के पीछे एक चहार दीवारी सी दिखती है जो दाहिने विंग के भीतर घुसती हुई चला जाती है, और जिस पर तरह-तरह के पोस्टर लगे हैं। एक सिनेमा का है 'तुम न आये सजन', दूसरा दवा का है। 'दिमागी पागलपन की दवा', तीसरा आन्दोलन का नारा है 'आन्दोलन चलेगा चक्का चलेगा'। बांयी विंग नम्बर एक पर, एक लोहे का फाटक सा दिखता है, जिस पर लिघा है - 'रोजगार नहीं है अन्दर मत जाइये।'

दूसरा, तीसरा और चोथा विंग खाली है। पहले विंग के पास कूड़ादान पड़ा है जिस पर 'कूड़ादान' लिखा है। उसी के पास एक पुराना मिट्टी के तेल वाला लैम्प पोस्ट जीर्ण-शीर्ण हालत में पड़ा है और जिसका टेढ़ा-मेढ़ा, रद्दी-सद्दी ढाँचा ही दिख पड़ता है।"[25]

इस प्रकार रंगमंच पर साज सज्जा के लिये निर्देश, नाटककार ने दे दिये हैं। दृश्य के प्रारंभ होते ही वह परदे का प्रयोग करता है और उसके खुलते ही।

"सीढ़ियों पर लेम्प पोस्ट के पास एक घायल क्षत-विक्षत व्यक्ति दौड़ता हुआ लगातार लंगड़ाता-लंगड़ाता मंच पर आता है और फिर औंधा कर के लेट जाता है। विंग से शोरगुल की आवाज आती है, ढेले, कंकड़, पत्थर उस वृद्ध व्यक्ति पर आते हैं, आवाजें आती हैं, मारो-मारो गद्दार है, झूठा है, मक्कार है..। कुछ मिनटों तक यह आवाज तीन टुकड़ों में आती हैं। सहसा प्रक्षकों के बीच से अन्तिम सीट पर से एक व्यक्ति उठता है और गैलरी से होता हुआ मंच पर जाता है। और उस वृद्ध व्यक्ति को

ढाँप कर बैठ जाता है, उसको भी चोटें लगती हैं, फिर वह धीरे-धीरे सिर उठाता है, घायल के सिर से खून निकलता रहता हैं। हाथ में भी चोट आ जाती है। पहले वह अपने घावों को देखता है फिर चोटों की तरफ देखता है। धीरे-धीरे वह उठता है, वृद्ध को हिलाता है डुलाता है फिर छोड़ देता है। ठण्डी साँस लेकर वह उठता है और आगे ड्राप तक आता है फिर जैसे कुछ सिसकियाँ लेता है।"[26]

भारत में नाटककारों ने रंगमंचीय विधआन को ही ध्यान में रखकर अपनी प्रादेशिक भाषा व हिन्दी भाषा के नाटकों का निर्माण किया। यद्यपि कई नाटककारों ने अपने नाटक तो बिना रंगमंच पर प्रस्तुत किये प्रकाशित भी करवा डाले। इसका एक कारण यह रहा कि उसमें नाटकीय रंगमंच विधान की सम्भावनाएँ थीं। कथ्य, भाषा, संवाद, परिवेशानुरपकता प्रयोजन की प्रासंगिकता आदि सभी विशेषतायें उस समय नाटककारों में थी। उन सबकी बारीकियों को ध्यान में रखकर ही रंग निर्देशक भी मंच सज्जा या दृश्य परिकल्पना व रंगदीपन आदि को नाटक में उतार कर अपने साथी कलाकारों द्वारा रंगमंच पर अभिनय करवा लेता है।

लोकशैली, हास्य व्यंग्य नाटक आदि को तो इस तरह के प्रयोगों में विशेष श्रेणी में रखा जाता है।

प्रकाश योजना :

प्रकाश संयोजन नाटक का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। भावों की तीव्रता, उतार-चढ़ाव मं प्रकाश योजना का अद्‌भुत प्रभाव पड़ता है। जैसे-जैसे वैज्ञानिक तकनीक विकसित होती गई वैसे-वैसे नाटकों में भी प्रकाश योजना के प्रयोग विकसित होते गये। प्राचीन काल में नाटक को रंगमंच पर दिन के उजाले में मनोरंजन के लिये खेला जाता था पर जब लोगों को दिन के उजाले से निकलकर रात के ठण्डे और शांत वातावरण में नाटक देखने की इच्छा हुई तो 'रंगमंच एवं नाट्यगृहों में मशालें जलाना प्रारंभ किया गया। बाद में एक समय ऐसा भी आया जब रंगमंच पर

गैस के हंडे जलने लगे और जब बिजली का प्रचार हुआ तो प्रकाश व्यवस्था रंगमंच पर और अधिक वैज्ञानिक होने लगी।
"प्रारंभ में जब अल्फ्रेड कंपनी बरेली आदि जगह जाती तो मशालें जलाया करती थी।"[27]

'गैस लाईट' के रंगमंच पर आने के बाद तो इसमें प्रयोग भी होने लगे। अन्धेरे में कभी तीव्र प्रकाश कर दिया जाता तो कभी-कभी मंद प्रकाश। बिजली के आविष्कार होने के बाद तो रंगमंच की प्रकाश व्यवस्था का स्वरूप ही पूरी तरह बदल गया। कई वर्षों तक विभिन्न प्रकार से रंगमंच पर इसका प्रयोग किया गया। "वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही आधुनिक विद्युत यंत्रों के आविष्कार से प्रकाश को नाट्य में नियंत्रित, नियोजित, केन्द्रित और प्रवाहित करने की विविध विशिष्ट विधियों ने नाट्य अभिनय के प्रभाव तथा उसके माध्यम, गति एवं कार्य व्यापार के संतुलित एवं व्यंजित करने में अभूतपूर्व योग प्रदान किया है।"[28]

पहले प्रायः व्यावसायिक रंगमंच न होने के कारण नाट्य मंडलियों के पास ज्यादा धन और सुविधाएँ उपलब्ध नहीं रहती थीं, जिससे वे तकनीकी पक्ष को और अधिक सुधार सकें, फिर भी नाटकों में इस प्रकाश व्यवस्था को कुछ हद तक नये आयाम मिलते रहे। साठोत्तर तक आते-आते नाट्यकला में रंगदीपन का महत्वपूर्ण स्थान बन गया, किन्तु प्रकाश व्यवस्था की भूमिका में कई छोटे-छोटे पहलुओं पर जोर दिया जाने लगा जिसमें नाटक की स्थितियों, घटनाओं, पात्रों के मानसिक उतार-चढ़ाव, मन के भावों का प्रदर्शन आदि की अभिव्यक्ति तथा इन्हें एक सुनिश्चित रंगसंकेत मिल सके।

आज निर्देशकों एवं नाटककारों का उद्देश साफ है। वे जानते हैं "वास्तव में प्रकाश योजना का अर्थ रंगमंच पर केवल उजाला कर देना मात्र नहीं है - उजाला करना है पर यह जानते हुए कि उसे कहाँ पर प्रकाश करना है कहाँ नहीं। इसमें

दृश्य और अभिनेता को प्रकाशित करना भी एक लक्ष्य होता है, पर इसके साथ ही अभिकल्पक (Lightman) को सारे नाट्यार्थ को प्रकाशित करना पड़ता है। इसलिये वह प्रकाश का उपयोग एक मंचीय मुहावरे के रूप में करता है। जिसमें सारी प्रकाश योजना अभिव्यक्ति का एक माध्यम बन जाती है। चित्रकार की कूंचि की तरह, शिल्पी की छैनी की तरह।"

नाट्य निर्देशक आधुनिक युग में प्रकाश योजना के नये प्रयोग कर रहा है इसलिये वह इन प्रकाश उपकरणों को अलग-अलग स्थानों पर नाटकों में भरपुर उपयोग में ला रहा है। जिससे ये उपकरण मात्र न रहकर अब नाटक का एक अभिन्न अंग बन गया है। दर्शकों के सामने भले ही सिनेमा घरों में बतायी जाने वाली फिल्मों का असर पनप रहा है फिर भी वह नाटक में रंगमंच पर प्रकाश के प्रयोगों को देखकर रोमांचित हो उठता है। इस प्रकार के प्रयोगों से नाटक के कथ्य का सम्प्रेषण तो ह ोता ही है इसके अलावा नाटक के अन्तराल में भी परदों की जगह प्रकाश का प्रयोग किया जाता है। जिसेसे दर्शकों को भी कुछ समय के लिये फिल्म व नाटक के बीच का अन्तराल समझने में सहायता मिलती है।

रंगमंच पर तो नाटक की घटनाओं के बीच का समयान्तराल से लेकर प्रारंभ व अन्त भी प्रकाश के माध्यम द्वारा सूचित किया जाता है। नाटकों के प्रस्तुतिकरण में दृश्य विभाजन रखा गया हो तो भी निर्देशक व नाट्य रंगकर्मी इसका सहारा लेते हैं। एक दृश्य की समाप्ति के बाद दूसरे दृश्य के प्रारंभ होने के मध्य यदि रंगमंच पर की गई सज्जा में परिवर्तन नहीं करना हो तो प्रकाश को पूर्ण बन्द करके धीरे-धीरे रंगमंच पर प्रकाश को फिर से तेज कर दिया जाता है। इस अन्धेरे और उजाले के अन्तराल के समय तक कलाकारों का आना और जाना, रंगमंच पर रखा हुआ सामान आदि, दृश्य के अनुसार थोड़ा बहुत परिवर्तित कर लिया जाता है।

रंगमंच पर की गई मंच सज्जा के अनुसार निर्देशक रंगों का भी प्रयोग

मनोवैज्ञानिक ढंग से करना उचित समझता है। क्योंकि हर रंग का प्रभाव मनोवैज्ञानिक तौर से दर्शकों पर पड़ता है। लाल, हरा, पीला, श्वेत, नीला रंग आदि सभी अपने प्रभाव को दर्शाते हैं।

"हल्के नीले रंग की किसी भी छाया या झलक (शेड) से, ठंडा व तड़के की पौ फटने की भावना उत्पन्न होती है। जिसे दृश्य में शोक, निराशा आदि का भाव दिखाया जाता हो तो यह रंग बहुत उपयुक्त होता है।
हिम श्वेत रंग बहुत स्पष्ट किन्तु ठंडा होता है। इसका प्रयोग जाड़े की रात, अकेलेपन और प्रतीक्षा के भाव प्रदर्शन के लिये उपयुक्त होता है।
श्वेत रंग - राजसभा, उत्सव, शोभायात्रा, उल्लास और उत्साह के प्रदर्शन को दर्शाने में अधिक उपयुक्त है।
हल्के भूरे पीले रंग का प्रयोग कमरे में सूर्य की धूप दिखलाने के लिये किया जाता है।... महादीप से लाल रंग का प्रयोग दृश्यपीठ के पीछे छिपते हुए सूरज का प्रदर्शन करने के लिये किया जाता है। इस प्रकार के प्रकाश में आगे का प्रकाश बंद करके विदाई, निराशा, वृद्धावस्था, त्याग, उपेक्षा, विरक्ति आदि भावों का प्रदर्शन किया जाता है।
गहरे लाल रंग का प्रयोग हत्या, वध, भयानक विपत्ति तथा अत्यन्त शोक की परिस्थिति में अति तीव्र होता है।"[29]

बादल सरकार ने अपने नाटकों में जगह-जगह प्रकाश व्यवस्था का वर्णन किया है। उनके ही एक नाटक 'अन्त नहीं' में दृश्य परिवर्तन के समय प्रकाश के संकेत दिये गये हैं। तथा फ्लेश बैक पद्धति में भी प्रकाश व्यवस्था को दर्शाया गया है। 'घर से अदालत का दृश्य'[30] 'सुमंगी तथा सुमन्त के प्रथम मिलन का विगत दृश्य'[31] तथा इसके अतिरिक्त 'आनन्द तथा अन्य पाँच पात्रों का मंच पर आना'[32] सभी अवसरों पर चाहे वह भावों का मूर्तिकरण हो या फिर रूप चरित्रों का अभ्यास करना हो प्रकाश को माध्यम बनाकर निर्देशक बड़ी सफलता के साथ इसे प्रस्तुत कर सकता

है। 'एवम् इन्द्रजित' नाटक में प्रकाश योजना द्वारा लेखक ने अपना मत स्पष्ट रूप से अंकित किया है।

नाटक के आरम्भ में अन्धेरे में इन्द्र का लेखक को अपना परिचय देना, सूचित करता है कि इन्द्र के जीवन का आरंभ और अंत एक ही है। दृश्य परिवर्तन के समय प्रकाश का उपयोग करना, ताकि दृश्य के मध्य में भी प्रकाश पुंज, डिमरों व स्पॉट लाईट का प्रयोग आदि प्रकाशीय उपकरण उपयोग में लाये गये हैं।

'इन्द्र और मानसी के मिल स्थल, पार्क से इन्टरव्यू, ऑफिस का दृश्य। जहाँ जिस पात्र पर विशेष भारत दिया जाना है वहाँ उसे प्रकाश पुंज से, तथा अन्य पात्रों को छाया के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इन्द्र, लेखक और मानसी पर आलोक तथा अन्य पात्र अमल, विमल और कमल छाया में दिखते हैं।"[33]

विजय तेंदुलकर के नाटकों में भी प्रकाश नियोजन यथा स्थानों पर किया गया है। उनके नाटक 'खामोश अदालत जारी है' में बेणा रे के स्वगत कथन के समय प्रकाश योजना बदलती है। "बेणारे का यह कथन मंच पर उपस्थित पात्रों के लिये नहीं है। सभी पात्र छाया से बने रहते हैं। वास्तव में बेणारे कुछ कहती, उसकी जड़ता को अन्धेरे में बोलने का अवसर (भीतर का स्वर) दिया गया है। कथन के पूरे होते ही अंधकार और फिर उजाले में अपने ही स्थान पर स्तब्ध जड़ बेणारे। बेणारे के मनोविज्ञान को हमारे सामने खोलने में यह प्रकाश योजना सहायक है।"[34] रंगमंच पर आलोकित प्रकाश उपकरणों को ऐसी जगह लगाया जाता है जिससे सभी दर्शकों को मंच पर हो रहे नाटक का पूर्ण आनन्द प्राप्त हो सके। दर्शकों की परछाईयों से व्यवधान उत्पन्न न हो इस कारण प्रकाश माध्यमों को क्रमशः प्रेक्षागृह के मध्य किनारों पर या फिर छत पर (रंगमंच की छत पर) लगाया जाता है।

लोक नाट्य में भी साठोत्तर युग में प्रकाश की व्यवस्था रहती है। अगर कोई

लोक नाटक बन्द नाट्यगृह में खेला जाता है तो उसमें प्रकाश की सुव्यवस्थित व्यवस्था रहती है। किन्तु जब खुले रंगमंच पर इन लोकनाट्यों को खेला जाता है तो एक बाँस के ऊपर फोकस लटकाकर उस पर रंगीन पेपर लगा दिया जाता है। और कुछ फोकस रंगमंच से बाहर लगाया जाते हैं जिससे चारों और उजाला हो जाता है। "प्रोसेनियम थियेटर में चूंकि दर्शक तस्वीर के फ्रेम सरीखे मंच के एक ओर ही बैठते हैं, इसलिये उन्हें रंगमंच पर चल रहे कार्य व्यापार, चलती फिरती तस्वीरों की तरह दिखने का खतरा रहता है, क्योंकि सामने पड़ने वाले स्पॉट प्रकाश के कारण उन्हें सिर्फ दो आयाम ही मिलते हैं, चौराई और ऊँचाई। मंच पर एक और अर्थात् तीसरा आयाम भी है गहरी, लेकिन यह अक्सर सहज में पता नहीं चलता।"[35]

साठोत्तरी नाटकों के प्रदर्शन में प्रकाश योजना का अपना एक अलग महत्व रहा है। इस समय प्रकाश योजना दो प्रकार से की जा रही है। कुछ नाटकों में प्रकाश व्यवस्था सामान्य है तो कुछ नाटकों में विशेष प्रभाव उत्पन्न करने के लिये प्रकाश संयोजन किया जा रहा है। सामान्य प्रकाश मुख्यतः नाटक में सिर्फ अभिनेताओं को दृष्टिगत रखने के लिये किया होता रहा है। तथा विशेष प्रभाव में वातावरण निर्माण, भाव अन्तर्चेतना आदि को उजागर करने के लिये प्रयोग में लाया जा रहा है।" प्रकाश के विशेष प्रभावों को नाटक में कुछ ही सेकण्ड में दिखा दिया जाता है। ताकि रंगमंच पर इसका प्रभाव कम न हो पाये तथा एक ही प्रभाव को दृश्य में बार-बार नहीं दोहराया जाता है।

इन विशेष प्रभावों को प्रकाश संयोजन से रंगमंच के पीछे लगे हुये सफेद परदों पर उतारा जाता है। जैसे - रेलगाड़ी का चलना, बादलों का चलना, संध्या के समय और प्रातःकाल के समय सूर्य का व आकाश के रंग का लाल होना, बाढ़ का आना, आदि प्रभावों की स्लाइड को प्रोजेक्टर के ऊपर रख दिया जाता है।

आज इस तरह के विशेष प्रभावों को रंगमंच पर उतारने का कार्य प्रकाश

संयोजक कर रहे हैं। इसमें मुख्य नाम श्री तापस सेन व आर. जी. मराठे का आता है।

प्रकाश संयोजन ने तो विविध कलात्मक रंग युक्तियों रंगमंच का कायाकल्प कर दिया है। रंगमंचीय प्रतिमानों में प्रकाश योजना निखर कर सामने आने लगी है। आज इस क्षेत्र में तो यह प्रयोग क्रांतिकारी रूप से आकर्षक स्वरूप हासिल करने में सक्षम हुआ है।

'आकाश झुक गया' नाटक में प्रकाश सामान्य है। पूर्ण आलोकित मंच पर रंग प्रस्तुति होती है। नाटक के प्रारंभ और अन्त में प्रकाश वृत्त का सार्थक उपयोग किया गया है। रंगकार्य संचालन, प्रकाश और छाया में केवल सूत्रधार नाटकीय ढंग से केन्द्रित होता है। मंच की कोई भी वस्तु दिखाई नहीं देती है। ऐसे ही नाटक के अन्त में दर्शक कक्ष और मंच की बत्तियाँ बुझाकर सूत्रधार पर प्रकाश वृत्त केन्द्रित होता है। इश नाटक की प्रकाश योजना सहज साध्य है।"[36]

डॉ. चन्द्र के ही 'भस्मासुर अभी जिन्दा है' नाटक में तकनीकी प्रकाश की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। सामान्य रंगस्थल पर सारी रंग प्रस्तुति यांत्रिक प्रकाश और अंधकार की सहायता से ही सम्पन्न होती है। आलोक वृत्त में ही पात्र दर्शकों के समक्ष आते हैं नयी रंग युक्ति, इस नाटक में इस प्रकार उपयोग में लायी गयी है कि नाटक के पात्र अनेक बार प्रकाश वृत्त में दर्शकों के बीच के उपजते हैं और मंच तक आते हैं। नाटककार ने प्रकाश व्यवस्था से सम्बन्धित नाटक में पर्याप्त निर्देश दिये हैं।"[37]

रंग विहीन प्रकाश भी मंच पर एक अद्‌भूत दृश्य सज्जा प्रस्तुत करता है। कभी-कभी प्रकाश और छाया के द्वारा विलक्षण चित्रात्मक प्रभाव पैदा किया जाता है। मंच पर प्रकाश जितना अभिव्यंजनात्मक होता है उतना ही अंधकार भी। छाया दृश्यों की निर्मिती में प्रकाश क्रिया व्यापार और भाव प्रदर्शन का महत्वपूर्ण अंग बन जाता

है। कभी-कभी छाया दृश्य संवाद से भी अधिक प्रभावी होता है। प्रकाश और अन्धकार का वैषम्य नाटक में ठीक वही भूमिका निभाता है जो संवाद और मौन। इस प्रकार प्रकाश और दृश्य सज्जा के योग से नाटकीय क्रियाव्यापार से सम्बद्ध देशकाल उजागर होता है। वस्तुतः स्थल के निर्धारण, दूरियों का आभास देने तथा काल की स्थिति और गतिशीलता को व्यंजित करने में, प्रकाश योजना अद्भूत मायावी सृष्टि करती है।"[38]

ध्वनि योजना :

साठोत्तरी रंगमंच के पहले ध्वनि प्रभाव के लिये वाद्य यंत्रों में कुछ ही सामान था। जैसे नगाड़ा, ढोल, सारंगी और तबला आदि। धीरे-धीरे नये-नये वाद्य यंत्रों के आ जाने से नाटकों में ध्वनि योजना को और महत्वपूर्ण बना दिया गया। आधुनिक युग में रंगमंच पर नाटकों को प्रभावशाली बनाने तथा पात्रों के भावों को उभारने में ध्वनि संयोजन महत्वपूर्ण कार्य करती है। नाट्य अनुभूति एवं दृश्य को सुदृढ़ बनाने के लिये निर्देशक वाद्य यन्त्रों से कई प्रकारों से नये-नये प्रयोगों के आधार पर नये वाद्यों को बनाते रहने का प्रयास करता रहता है।

प्राचीन समय से चली आ रही परम्परा में रंगमंच पर संगीत के सूक्ष्म अध्ययन से पता चलता है कि नाटक में संगीत का मूल आधार स्वर तथा लय है, जो गायन, वादन एवं नर्तन के रूप में पाये जाते हैं।

गायन कला में स्वर एवं लय के साथ शब्दों का प्रयोग होता है। इस शब्द रूपी काव्य का ग्रहण करने से गायन की उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है।

संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि में वाद्य भी एक तत्व है, जिसमें स्वर तथा लय का स्वच्छन्द एवं प्रभावपूर्ण प्रयोग स्वतन्त्र रूप से होता है। वाद्य नाटक में किसी भी जगह प्रयोग में लाई जा सकती है।

नृत्यकला का प्रदर्शन भी नाटक के रंगमंच पर संगीत के अनुरूप ही स्वर तथा लय के साथ अंग संचालन के रूप में किया जा सके, यह नाटक के संचालन के समय

निर्देशक ही तय करता है।

वाद्य में नाद के दो भेद माने गये हैं, आहतनाद और अनाहत नाद। आहत नाद यानि जिसे सुना जा सके एवं व्यवहार में लाया जा सकता है। इसमें पाँच ध्वनियाँ निकलती हैं।

1. नखज : इसके अन्तर्गत वीण वाद्य आदि आते हैं।
2. वायुज : इस ध्वनि के अन्तर्गत वंशी, वेणू आदि आते हैं।
3. चर्मज : इसके अन्तर्गत मृदंग, तबला आदि आते हैं।
4. लोहज : ताल, मंजीरा, घण्टा आदि वाद्य आते हैं।
5. शरीरज: इसके अन्तर्गत कण्ठ से निकली ध्वनि आती है।

इन पाँचों ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'पंचमहावाद्यानि' कहा जाता है। महर्षि भरत और दंतिल इन वाद्यों की संख्या चार मानते हैं - तत, आनद्ध, धन व सुषिर।

तत वाद्य : तत वाद्य यानि तन्त वाद्य, जिसके अन्तर्गत वाद्य में तार लगाया जाता है। तत वाद्य भी दो प्रकार के होते हैं, तत और तित वाद्य। तत वाद्य उंगलियों से छेड़कर बजाये जाने वाले वाद्य होते हैं - जैसे स्वरमंडल, तानपूरा आदि। कोण त्रिकोण से बजाये जाने वाले वाद्य जैसे - सितार, सरोद, सुरबार, विचित्र वीणा, तंजोरी वीणा, गोटुवाद्यम आदि आते हैं। दूसरा प्रकार तित वाद्य है - जिसे गज से रगड़कर बजाया जाता है। जैसे - सारंगी, रावणहत्था, दिलरुबा, बोला, वॉयलिन आदि।

अवनद्ध वाद्य : ये भीतर से खोखले तथा चमड़े से मढ़े हुए होते हैं। जिसे हाथों द्वारा या किसी वस्तु की धाप द्वारा बजाया जा सकता है। महर्षि भरत ने अपने नाट्य शास्त्र में ऐसे वाद्यों के अन्तर्गत मृदुंग, पणव तथा दर्दुर तीन पुष्कर वाद्यों का वर्णन किया है।

संगीत रत्नाकरा में - वरह, मर्दल, करटा, घट, हुडुक्का, डमरडंगा, दुंदुभी, तुम्बकी

आदि हैं।

आधुनिक युग में इस प्रक्रिया को निम्नलिखित तहर से बाँट दिया गया है -

1. दोनों हाथों की ऊँगलियों से बजाये जाने वाले वाद्य - पखवाज, मृदंगम, तबला, ढोलक, मादल, नाल, खोल आदि।

2. एक हाथ की उंगलियों से बजाये जाने वाले वाद्य - हुडुक्क, खंजरी, दायरा आदि।

3. शंकु की सहायता से बजाये जाने वाले वाद्य - नगाड़ा, धौंसा, ढाक आदि।

4. एक ओर हाथ से व दूसरी ओर डंडी से बजाये जाने वाले वाद्ये - ढोल परह आदि।

5. डोरी की चोट से बजाये जाने वाले वाद्य - डमरु, ढक्का आदि।

सुषिर वाद्य : मुंह से फूंककर बजाये जाने वाले वाद्य सुषिर वाद्य कहलाते हैं। प्राचीन समय में इन वाद्यों का प्रयोग किया गया है एवं इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। भारत में वंशी, तुरही, राख, इत्यादि का प्रचलन रहा। विकास की दृष्टि से मध्यकाल में इसकी अभूतपूर्व प्रगति पश्चिम के देशों में हुई, जहाँ ट्रम्पेट, सेक्सोफोन, क्लॉरेन्ट ऑर्गन आदि वाद्य प्रचलित हुए।

इस प्रकार के वाद्यों को भी दो प्रकार से बजाया जाता है।

1. मूँह से फूँककर बजाये जाने वाले वाद्य जिसमें - वंशी, मुरली, पुंगी, शहनाई, नाट्यस्वरम् आदि हैं,
2. अन्य किसी साधन से वायू उत्पन्न करके बजाये जाने वाले वाद्य - हारमोनियम, स्वरपेटी आदि।

धन वाद्य : लकड़ी या धातुओं से बजाये जाने वाले वाद्य धनवाद्य कहलाते हैं। प्राचीन समय में इन वाद्यों का विस्तार अधिक हुआ क्योंकि तब इसका प्रयोग रंगमंच पर शास्त्रीय संगीत के लिए होता था।

मध्यकाल में इसका कोई ज्यादा विस्तार नहीं हो पाया।

आधुनिक काल में जलतरंग, काष्ठतरंग, शशितरंग, घण्टातरंग, घुंघरू तरंग आदि को इस श्रेणी में नहीं रखा गया, क्योंकि कुछ लोगों का मानना था कि ये वाद्य तरंग वाद्य की श्रेणी में आते हैं।

डॉ. लालमणि मिश्रा के अनुसार - "ऐसे सभी वाद्य जिनमें 'तरंग' शब्द प्रयुक्त होता है जैसे काष्टतरंग, घुंघरू तरंग आदि का वर्गीकरण घन एवं अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत न मानकर एक अन्य वर्गीकरण 'तरंग वाद्य' के अन्तर्गत आना चाहिये। वे मानते हैं कि घन अथवा अवनद्ध वाद्य जो अपने विभिन्न आकार के कारण भिन्न स्वरों द्वारा रागोत्पत्ति कर सकें 'तरंग वाद्य' कहे जाते हैं। इनका वादन प्रहार द्वारा ही होता है जो हाथ या किसी डण्डी से भी हो सकता है।

लेकिन यह तथ्य तो सत्य जान पड़ता है क्योंकि जलतरंग के प्याले चीनी मिट्टी के बने होते हैं। इसलिये प्यालों की घनता के कारण घन वाद्य में रखना अथवा डण्डी की प्रहार से वादन करने के कारण घन वाद्य के वर्ग में मानना विशेष उचित नहीं जान पड़ता। फिर भी इन वाद्यों को मुख्यत: तीन भागों में बाँटा जा सकता है -

1. एक ही आकार के दो हिस्सों को टकराकर बजाये जाने वाले - झाँझ, मँजीरा, कठताल वाद्य आदि हैं।
2. डण्डी अथवा लकड़ी या मुलायम हथौड़ी के प्रहार से बजाये जाने वाले - घण्टा, विजयघण्टा, बड़ी झाँझ आदि।
3. हाथ हिलाकर बजाये जाने वाले वाद्य - झुनझुना, रम्भा आदि।

साठोत्तरी रंगमंच पर कोरस गान अथवा नेपथ्य से वाद्य ध्वनियों द्वारा प्रभाव पैदा करने के लिये इन वाद्यों का समय समय पर प्रयोग किया जाता है। पहले संगीत प्रधान नाटक रंगमंच पर खेले जाते थे। लेकिन छठे, सातवें, आठवें आदि दशकों में संगीत का खास प्रयोग पात्रों की मन:स्थिति तथा उसके अन्तर्द्वन्द्व को उभारने के लिये

प्रयुक्त किया जाने लगा।

लोकनाट्य में तो संगीत की भरमार रहती ही है। इन लोकनाट्यों में गीतों को तो प्रमुख स्थान मिलता है।

'आदमी का गोश्त' कई तरह से लोकनाट्य शैली में खेला गया। इस नाटक में पहले गीत नहीं थे फिर भी लोकशैली की प्रस्तुति के लिये इसमें वंदना की जगह नाटक का प्रारंभ मार्च शैली की तरह भेरुजी की स्तुति कर किया गया है -

"भेरु बाबा हम थारा सब लाल
म्हारा भेरु बाबा थारी जै जैकार
झूठ फरेबी हम सब भैया लोभी लपट पूरा
मुँह में राम बगल में छुरियाँ मतलब का तंबूरा
मतलब का तंबूरा
भैरु हम सब कानखजुरा।"[39]

साठोत्तरी हिन्दी नाटकों में वाद्य एवं संगीत का प्रयोजन समूहगान के रूप में किया गया, जिसमें गायक वृंद या गायन मंडली ने मंच के पीछे बैठकर गीत गाये हैं। लोकनाट्य में तो गवैये, बजैये, नचैये की एक बड़ी टोली ही मंच पर उतर कर आती है और गीत गाती है। मणि मधुकर के 'दुलारी बाई' नाटक के एक दृश्य में गायन मंडली किस तरह गाती हुई मंच पर आती है।

"कल्लू- हाजरीन, इस गाँव में दुलारी बाई के कई प्रेमी हैं, एक मैं भी हूँ। जी हाँ, अब बंदा कल्लू भांड के रोल में है, और रिझाने, खिझाने, पटाने चला है दुलारी बाई को। तो सुनिये साहिबान, एक उलजलूल लान, एक नाच, एक घमासान कल्लू भांड की दास्तान....

गायन मंडली- बोलो रे बोलो, कल्लू भांड की जय बोलो
भेष बदलकर आया जिओ

रंडा मुस्टंडा, जैसे हो पंडा, जिओ
हाथ में डंडा ऊपर झंडा लगाया जिओ।
अक्ल अडंजर, दाँतों का मंजन, सब दुख भंजन
है मनोरंजन
झन झन झन झन बजाया जिओ।
उगना है अच्छा, अन्धा है सच्चा, मत कर दिल कच्चा
खुश रहो बच्चा,
खाकर के गच्चा हंसाया जिओ।"[40]

शरद जोशी के नाटक 'अन्धे का हाथी' में भी रंगमंच पर ही 'पाँचों अन्धे' गीत गाते हैं। गीत के मध्य में सूत्रधार धीमे-धीमे ठुमकते हुए यूँ प्रवेश करता है जैसे वह रस्सी से हाथी को लिये आ रहा है। दर्शकों को हाथी बता रहा है, उसके चारों ओर घूम रहा है, उससे डर रहा है, गीत गाते अन्धे मंच के तीनों ओर बंटकर खड़े होने लगते हैं। गाते हैं नाचते हैं -

हाथी... हा हा हा हाथी
हाथी... हा हा हा हाथी
आजू की बाजू
बाजू की आजू
सूँड की दमू तेरी
दमू की सूँड तेरी
पैर है अम्बा बम्बा
हाथ है बिजली खम्भा।"[41]

रंगमंच पर नाटक करनेवाले पात्र अभिनेता जो कुछ भी संवादों के माध्यम से कहते हैं, वे सिर्फ संवाद ही नहीं होते बल्कि वे अपने उच्चारण में आरोह-अवरोह, गति, लय आदि द्वारा ध्वनियों के समूह की सृष्टि करते हैं। ये भाषागत अर्थ के अलावा

स्थिति घटना, भाव और सम्पूर्ण नाट्यानुभूति के विशिष्ट एवं सूक्ष्म अर्थों को उद्घाटित करते हैं।

नाटक में नेपथ्य मं संगीत एवं वाद्यों के प्रयोग से विशेष प्रभाव उत्पन्न किया जाता है। नाटक के प्रारम्भ में, मध्य में, समूह गान के समय, अन्त तक नाटक में संगीत का होना नाटक को और अधिक प्रभावी बनाता है। इसलिये मोहन राकेश का मानना है कि नाटक व रंगमंच मूलत: एक भव्य माध्यम है।

"रंगमंच में दृश्य की आपेक्षिक स्थिरता के बावजूद जो एक आन्तरिक गति रहती है वह शब्दों और ध्वनियों की निरन्तरता से ही उपजती है क्योंकि यहाँ जो देखा जाता है वह सुने जा रहे गा ही रुपान्तर होता है।"[42]

'खामोश अदालत जारी है' के अन्त में नेपथ्य गीत एवं नाटक के बीच में होने वाले कीर्तन या अंग्रेजी गीत दर्शकों को काफी प्रभावित करते हैं। वाद्य ध्वनियों द्वारा लोग अनेक सूक्ष्मतम मानसिक स्थितियों को अभिनय के साथ जोड़ा जा सकता है। दृश्य परिवर्तन आदि में भी प्रकाश के साथ संगीत का प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा रहा है।

'आकाश झुक गया' नाटक में पार्श्व ध्वनि का सार्थक प्रयोग हुआ है। रंग प्रस्तुति के समय 'मैं नाम सत्य है, जैं मुक्ति है' में पार्श्व ध्वनि का प्रयोग हुआ है। डॉ. चन्द्र ने अपने इस नाटक में रंग प्रस्तुति में भी ध्वनि का संकेत दिया है -
"भीड़ के कोलाहल और मारो स्वामी को, मारो स्वामी को... ये भ्रष्ट है, भ्रष्टाचार फैलाता है, जला दो इसका मठ आदि पार्श्व ध्वनियाँ प्रस्तुति को और पर्याप्त गति और प्रभाव प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त नाटक में सूत्रधार के कथन मुक्तछंद में हैं। जिन्हें पार्श्व ध्वनि योजना द्वारा प्रभावपूर्ण ढंग से प्रसारित किया जा सकता है। पार्श्व से संगीत-वाद्य द्वारा ध्वनियों की योजना इस नाटक में हुई है।"[43]

आधुनिक ध्वनियों के लिये जिन वाद्यों का प्रयोग किया जा रहा है उनमें डॉ. चन्द्र का नाटक कुत्ते भी है जिसमें ध्वनि संगीत योजना प्रभावोत्पादक व नवीन है।

"सामान्य पार्श्वध्वनियों में कुत्तों के भौंकने, कार-स्कूटर रोकने और स्टार्ट होने की आवाजों की सार्थक योजना है। इस नाटक में संगीत ध्वनि की प्रयोगशीलता आधुनिक है। रंग प्रस्तुति में दो स्थलों पर बाहर सड़क से आती हुई फिल्मी गीतों की रिकॉर्डिंग पर दृश्य सन्दर्भ को सटीक बैठाया गया है। यह रिकॉर्डिंग रंग कार्य को अपूर्व आकर्षण प्रदान करती हैं।"[44]

धर्मवीर भारती के नाटक 'अन्धा युग' में जगह-जगह ध्वनि का संकेत दिया है। जिससे नाटक सार्थक रूप से रंगमंच पर संगीत के साथ खेला जाता है। नाटक के आरम्भ में ही दो प्रहरी मंच पर घूमते दिखाई देते हैं और वार्तालाप करते हैं। "नेपथ्य से आंधी की सी ध्वनि आती है। एक प्रहरी कान लगाकर सुनता है, दूसरा भौहों पर हाथ रखकर आकाश की ओर देखता है। इसके अलावा वन में सियारों का रोदन, पशुओं के भयानक स्वर, रथों की घरघराहट, घोड़ों की टापों, घण्टियों की ध्वनियों, शंखनाद लगातार विस्फोट, ज्वालामुखियों की सी गड़गड़ाहट, भयानक आर्तनाद, वंशी ध्वनि, आदि स्थानों पर आधुनिक वाद्य यंत्रों का प्रयोग कर नाटक में विभिन्न प्रभावों की सृष्टि की गई है।"[45]

डॉ. शंकर शेष का लिखा हुआ नाटक 'पोस्टर' कीर्तन शैली में लिखा गया है। इसलिये इस नाटक में लोकगीत संगीत की भरमार है। उन्होंने तो इन गीतों के प्रयोग से बड़ी कुशलता के साथ नाटक में कथ्य को आगे बढ़ाया है। इसका प्रारम्भ ही संस्कृत श्लोक से किया गया है। बाद में कीर्तन द्वारा गणपति की वंदना की जाती है। जो वर्तमान समाज परिवेश पर कटाक्ष भी करता है एवं जनमानस का अभिनन्दन भी।

"गाईये गणपति जगवंदन

गिरजासुत गिरजापतिनंदन

गाइये गणपति जग वंदन

कीर्तन में सब देव पधारें

राग द्वेष सब स्वर्ग सिधारे

कालेपान का मुँह हो काला

जनमानस का हो अभिनंदन।"[46]

इस नाटक में एक गजल भी शामिल है।

"साकी जाम पिला दे रे!

साकी जाम पिला दे रे !

उठाके अपनी नजरों का खंजर..

मेरा जिगर हिला दे रे

साकी जाम पिला दे रे।"[47]

इन गीत एवं गजलों से नाटक में संगीतत्व तो आया ही है साथ ही साथ प्रस्तुति में भी गतिशीलता अधिक बढ़ गई है।

'चरनदास चोर' में गीत तथा नृत्य का सुंदर संयोजन है। ये गीत छत्तीसगढ़ी में है। नाटककार का मानना है - 'लोकनाट्य में संगीत अहम् स्थान रखता है और बिना नाच गाने के तो वह निखरकर या उभरकर सामने नहीं आ पाता है।"[48]

हबीब तनवीर का यह नाटक चूंकि नृत्य प्रधान शैली का है अतः इस नाटक को कई निर्देशकों ने रंगमंच पर अलग-अलग तरीके से नये प्रयोग के साथ प्रस्तुत किया। नाटक में ये भजन, बच्चों के गीत, नृत्य करनेवाले गीत, आदि सभी गीत कथासूत्र में एक माला की तरह पिरोये हुए से लगते हैं। इन गीतों के माध्यम से भ्रष्ट व्यवस्था पर चोट भी की गई है और नाटक की घटनाओं को एक साथ लेकर चला गया है। 'चरनदास चोर' के एक दृश्य में -

'जुलूस सामने है पंथी गायक नाचते और गाते हुए मंच पर आते हैं

चरनदास यम के चोरी तैय मर करबे
सतनाम सहीनाम नहीं पावे हो चरनदास
यम के चोरी तैय मत करबे।
झुठ नई छूटे हो झूठ के बोलइया से,
तोरे जीव जीव के कैसे मुक्ति लगाबे हो
चरनदास यम मे चोरी तैय मत करबे।"[49]

बच्चों का एक गीत इस तरह है -

"अटकन मटकन दही चटकन
खोलो भइया मोरो ढक्कन की चीज है
ढक्कन में निकले है एक बिल्ली
चूहा भागे दनादन ये चीज है।"[50]

मणि मधुकर और हबीब तनवीर जैसे नाटककारों ने अपने लोकनाट्य परम्परा में लिखे गये नाटकों में संगीत और वाद्ययंत्रों का भरपूर प्रयोग किया है। इनके व्यावहारिक ज्ञान व लोकनाट्य रूपों को लेकर किये गये प्रयोग लोकसंगीत की सृजनात्मकता का प्रतीक है। लोक संगीत के प्रभावों के बारे में विश्वबावन जी देवलियाँ ने अपना कथन स्पष्ट करते हुए कहा -

"समकालीन रंगमंच जब अपनी जड़ों को तलाश रहा हो, तब यह निर्देशक की कल्पना शक्ति और रचनाशक्ति पर निर्भर करता है कि नाट्य रचना में संगीत के संकेत के अभाव में भी वह संगीत का कैसा प्रभावी प्रयोग करे। 'बकरी', 'रसगंधर्व', 'एक सत्य हरिश्चंद्र', 'सबरंग मोहभंग', 'सगुन पंछी', 'मायावी सरोवर' आदि जैसे नाटकों में लोकशैली की छाप होने के कारण लोक संगीत सफलता युक्त प्रयोगशीलता दृष्टव्य है।"[51]

श्री शंकर शेष ने भी अपने नाटकों में ध्वनि यंत्रों का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। उनके 'कालजयी' नाटक में तो आधुनिक वाद्ययन्त्रों की भरमार है। 'नेपथ्य

में संगीत की ध्वनियों, चीखने-मरने की आवाजें, रोंगटे घड़े कर देने वाली चित्कारें, तालियों की गड़गड़ाहट, गोलों की भयानक आवाज, आदि का प्रयोग किया गया है।"[52]

'लड़ाई जारी है' नाटक में पार्श्व ध्वनियों की बड़ी व्यापक और सार्थक योजना देखने को मिलती है। रंग प्रस्तुति की प्रभावोत्पादकता और गतिशीलता को बहुत अंशों में पार्श्व-ध्वनियों पर आधारित करने में नाटककार डॉ. चन्द्र को सफलता मिली है। जुलूस और मारो-मारो की आवाजें अपनी माँगों के सन्दर्भ में बड़े रंग-कौशल के साथ प्रसारित की गई है। नाटक में पार्श्व ध्वनि योजना की विशेषता यह है कि जहाँ कहीं भी ध्वनि योजना हुई है वहाँ उसका लम्बा गतिशील सिलसिला चला है। जो किसी मूल त्रासद केन्द्र पर परिवर्तित होकर प्रभावशाली ढंग से समाप्त होता है।

– नेपथ्य में पहले 'हम स्वतन्त्र हैं, हम स्वतन्त्र हैं' की ध्वनियाँ गूंजती हैं और धीरे-धीरे रोने की आवाज में बदल जाती है... फिर बचाओ-बचाओ की आवाज में नारी का चीत्कार उभरने लगता है। इसी बीच समर्थ अत्याचारी की भी आवाज सुनाई देती है।

'तुम्हें कोई नहीं बचा सकता, बचाने वाला तो मैं ही हूँ। और अन्त में बचाओ-बचाओ की आाज स्त्री के धीरे-धीरे हाँफने की आवाज में बदल जाती है। यह पार्श्वध्वनि योजना बड़ी सार्थक और प्रभावोत्पादक है। नाटक के अन्त में 'लड़ाई जारी है, लड़ाई जारी है' की प्रतिध्वनियाँ गूँजने लगती हैं मानो नाटक सार्थक रूप से अपने नाम को चरितार्थ कर रहा हो।"[53]

शास्त्रीय संगीत वाद्यों का प्रयोग मंच पर तो नहीं हुआ किन्तु, नेपथ्य में कोरस गान आदि जगहों पर जरूर होता है। कभी-कभी नाटक में एक ही वाद्य का प्रयोग किया जाता है, या फिर दो वाद्यों की जुगलबंदी तैयार कर नाटक में संगीत को रखा जाता है।

सुरेन्द्र वर्मा ने अपने नाटक 'एक दूनी एक' में इसी तरह दो वाद्यों को मिलाकर नाटक के संगीत में प्रभाव उत्पन्न कर दिया है। सिर्फ सितार की धुन अकेलेपन व सूनेपन को उजागर करने के लिये तथा उसके साथ तबले की जुगलबंदी भी मन की उथल-पुथल व आत्मसंघर्ष को उजागर करती है।

"आत्मसंघर्ष को ध्वनित करने वाली जुगलबंदी ऊँची होती है। नेपथ्य में लहरों का गर्जन ऊँचा होने के साथ-साथ आदमी औरत को आलिंगन में ले लेता है, माथा, आँखें और होंठ चूमता है। औरत शुरु के क्षणों में उतनी प्रस्तुत नहीं है फिर उष्मा के साथ उत्तर देती है। फिर एकाएक छिटकर अलग हो जाती है, दोनों एक दूसरे को देखते हैं। गर्जन उन्मादी है। आदमी अपने आप को संभालने का यत्न करता है। गर्जन धीमा पड़ता है।"[54]

इसी मन की उथल पुथल और आत्मसंघर्ष को 'आषाढ़ का एक दिन' में मोहन राकेश ने कालिदास और मल्लिका के मिलने और बिछड़ने के समय 'मेघ गर्जन' के रुप में किया।

"बिजली चमकती है और मेघगर्जना सुनाई देती है। कालिदास एकबार चारों ओर देखता है। फिर झरोखे के पास चला जाता है। वर्षा पड़ने लगती है। वह झरोखे के पास से आकर ग्रन्थ को एकबार फिर उठाकर देखता है और रख देता है। फिर एक दृष्टि अन्दर की ओर डालकर ड्योढ़ी में चला जाता है। क्षणभर सोचता सा वहाँ रुका रहता है। फिर बाहर से दोनों किवाड़ मिला देता है, वर्षा और मेघ गर्जन का शब्द बढ़ जाता है। कुछ क्षणों के बाद मल्लिका बच्चे को वक्ष से सटाये अन्दर से आती है। कालिदास को न देखकर दौड़ती सी झरोखे के पास चली जाती है। मल्लिका कालिदास! उसी तरह झरोखे के पास से आकर ड्योढ़ी के किवाड़ खोल देती है। कालिदास के पैर बाहर की ओर बढ़ने लगते हैं। और बच्ची को अपने से सटाकर रोती

हुई उसे चूमने लगती है। बिजली बार-बार चमकती है और मेघ गर्जना सुनाई देती रहती है।"[55]

इस प्रकार ध्वनि संयोजन भावों के उतार-चढ़ाव को अभिव्यक्ति देता चलता है।

प्राचीन वाद्यों का प्रयोग आज भी नाटक में गायन मण्डली करती है। मध्यकाल में नाटकों का प्रयोग कम ही हुआ है। आधुनिक युग आते-आते कई वाद्य यन्त्रों का नई तकनीक द्वारा प्रयोग में लाया गया। खासकर साठ के दशक के बाद हिन्दी नाटकों, लोकनाट्यों, मन के भावों तथा नृत्य, गीत, नेपथ्य तथा आत्मसंघर्ष आदि स्थानों पर इनका वर्णन सहज ही मिलता है। नाट्य निर्देशक अपनी चतुराई से इन माध्यमों का प्रयोग कर नाटक को लय, गति एवं अभिनय में बाँधता हुआ नाटक को प्रभावकारी बनाता है।

नेपथ्य :

नाटक में नेपथ्य का विशेष महत्व है। किसी भी नाटक से नेपथ्य को हटा दिया जाय तो उसमें फिर कुछ नहीं रह जाता। वह सिर्फ पठनीय नाटक बनकर रह जाता है। रंगमंच पर एक नाटक की प्रस्तुति के लिए नेपथ्य का होना बहुत जरुरी है। क्योंकि इसके कारण ही एक नाटक को पूर्ण रूप से संचालित किया जाता है। इसके विशिष्ट कई पहलू हैं- जैसे किसी भी नाटक को रंगमंच पर प्रदर्शित करना हो तो पहले ही निर्णय कर लिया जाता है कि पाश्र्व मंच में कौन क्या कार्य करेगा!

एक नाटक के लिये पार्श्वमंच में इन लोगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है - मंच प्रबंधक, मंच परिकल्पना, मंच प्रभारी, मंच निर्माण आदि कार्य को एक विभाग मिलकर करता है। संगीत के लिये संगीत संचालक, वाद्य संचालक, संगीत प्रभाव, संगीत निर्देशक, ध्वनि आदि को दूसरा विभाग मिलकर करता है। तीसरा विभाग अर्थात् नृत्य संयोजन, नृत्य प्रभाव का ध्यान देता है। प्रकाश निर्देशक को नाटक

प्रस्तुति के कुछ समय पहले ही बता दिया जाता है कि कहाँ कौन सा इफेक्ट नाटक में देना है, जिससे निर्देशक को भी आसानी हो जाती है और वह सभी निर्देशों की रिहर्सल पहले ही कर लेता है।

संचालन सहायक, वस्त्र परिकल्पना, वस्त्राभूषण प्रभारी, वस्त्र निर्माण आदि का कार्यभार वेशभूषाकार करता है। मंच सज्जा, मंच सामग्री का कार्य सहायक निर्देशक अपने ध्यान में रखकर लड़कों से करवाता है। रुप सज्जा, छायाचित्र, संपादन आदि का कार्य अपने कामों में महारत हासिल किये लोगों को सौंपा जाता है। अंत में सबसे अहम् भूमिका होती है नाटक निर्देशक की! जो इन्हें समय-समय पर अपने कार्यों को किस तरह करना है, अपने कौशल द्वारा एक ही नाटक के अनुसार बताता है और सब पर नजर रखता है।

साठोत्तरी नाटकों में नाटककार ने जगह-जगह अपने नाटकों में नेपथ्य का प्रयोग किया है क्योंकि उनकी दृष्टि तो रंगमंच को ध्यान में रखकर ही नाटक लिखने की थी।

नाटक को प्रभावी बनाने के लिये साठोत्तरी नाटकों में संवादों और संगीत वाद्यों की आवाज़ों को नेपथ्य में ज्यादा महत्व दिया गया है। जैसे लक्ष्मीकांत वर्मा के नाटक 'रोशनी एक नदी है' में नाटक के प्रारंभ से पूर्व ही नेपथ्य से 'मारो, काटो, ये गद्दार है, झूठा है मक्कार है।" आदि की आवाजें आती हैं और पात्रों के मंच पर प्रवेश करने के कुछ ही देर बाद "सहसा नेपथ्य से फिर शोर उठता है"[56], "सीटियाँ बजती हैं"[57], "फिर धीरे-धीरे स्टेज पर रोशनी आती है।"[58]

नाटक के प्रारंभ होने से पहले ही दर्शकों के दिल को दहला देने वाली चीखें और संवादों को संगीत के साथ नेपथ्य में बोला जाता है और वही खूनी खंजर, रक्त

से लिपटी लाशों व कौमी नृत्यों को जब रंगमंच पर पात्रों के प्रवेश द्वारा दर्शाया जाता है तो प्रकाश का रंग उस पर लाल होता है। जिससे दर्शकों को नाटक का अर्थ पहले ही समझ में आ जाता है कि नाटक का विषय किस बात पर आधारित है।

नेपथ्य से दी गई आवाजें, ध्वनि, संवाद, संगीत आदि जो बातें नाटककार निर्देशित करता है उसमें नाटक का मूल उद्देश एवं समाज में हो रहे अकृत्य को दर्शाना भी होता है, क्योंकि रंगमंच पर सीधे-साधे आमने-सामने वह इसका साक्षात्कार दर्शकों के साथ नहीं कर सकता!

संदर्भ सूचि

1.	हिन्दी रंगमंच विविध आयाम - डॉ. रेखा गुप्ता	पृ. 143
2.	वही	पृ. 43
3.	वही	पृ. 43
4.	वही	पृ. 43
5.	वही	पृ. 44
6.	रंगशिल्पी मोहन राकेश	पृ. 36
7.	वही	पृ. 37
8.	सुदामा दिल्ली आये - हमीदुल्ला (लेखकीय निवेदन)	
9.	वही	
10.	वही	
11.	शुतुरमुर्ग	पृ. 7-8
12.	आधुनिक हिन्दी नाटक : एक यात्रा दशक - श्री नरनारायण राय	पृ. 174
13.	बकरी : निर्देशक की बात (कविता नागपाल)	
14.	दिनमान - 28 जुलाई 1974	पृ. 43
15.	समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच	पृ. 149
16.	करफ्यू - लक्ष्मीनारायण लाल	पृ. 61
17.	अन्धा युग - धर्मवीर भारती	पृ. 15-16
18.	एक सत्य हरिश्चंद्र - लक्ष्मीनारायण लाल	पृ. 76
19.	वही	पृ. 15
20.	वही	पृ. 45
21.	सुदामा दिल्ली आये - हमीदुल्ला	
22.	वही	
23.	हत्यारे - नरेन्द्र कोहली	पृ. 13
24.	वही	पृ. 37
25.	रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकान्त वर्मा	पृ. 1
26.	वही	पृ. 2
27.	राधेश्याम कथावाचक - मेरा नाटक काल	पृ. 3
28.	नाट्य प्रस्तुतिकरण : स्वरूप और प्रक्रिया - डॉ. विश्वभावन देवालिया	पृ. 225
29.	रंगमंच कला और दृष्टि - गोविन्द चातक	पृ. 57
30.	अंत नहीं - बादल सरकार	पृ. 15
31.	वही	पृ. 56
32.	वही	पृ. 56
33.	वही	पृ. 222
34.	आज के रंगनाटक : एक तुलनात्मक अध्ययन-डॉ. बिन्दु भट्ट	पृ. 79
35.	रमेश राजहंस - नाट्य प्रस्तुति : एक परिचय	पृ. 103
36.	नाटककार डॉ. चन्द्र - संपा. डॉ. केदारनाथ सिंह	पृ. 41
37.	वही	पृ. 41
38.	रंगमंच कला और दृष्टि	पृ. 56
39.	आदमी का गोश्त - डॉ. विलास गुप्ते	पृ. 9

40. दुलारी बाई - मणि मधुकर — पृ. 25-26
41. अन्धों का हाथी - शरद जोशी — पृ. 20-21
42. साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि - मोहन राकेश — पृ. 91
43. नाटककार डॉ. चन्द्र - संपा. केदारनाथ सिंह — पृ. 42
44. वही — पृ. 43
45. अन्धा युग - धर्मवीर भारती — पृ. 15-16...?
46. पोस्टर - डॉ. शंकर शेष — पृ. 10
47. वही — पृ. 106
48. चरनदास चोर - हबीब तनवीर - भूमिका से
49. वही — पृ. 69
50. वही — पृ. 19
51. डॉ. विश्वभावन देवालिया - नाट्य प्रस्तुतिकरण : स्वरूप और प्रक्रिया — पृ. 230
52. कालजयी - शंकर शेष — पृ. 5
53. डॉ. चन्द्र के प्रयोगशील नाटक — पृ. 44
54. एक दूनी एक - सुरेन्द्र वर्मा — पृ. 21
55. आषाढ़ का एक दिन - मोहन राकेश — पृ. 119
56. रोशनी एक नदी है - लक्ष्मीकान्त वर्मा — पृ. 3
57. वही — पृ. 5
58. वही — पृ. 6